B.A (Hons) Part 1
Indian Philosophy

प्रश्न - सांख्य दर्शन के कारणता - सिद्धान्त या सत्कार्यवाद या 'कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व कारण में वर्तमान रहता है' की समीक्षात्मक व्याख्या करें ?

उत्तर

प्रायः प्राचीन भारतीय दार्शनिकों ने अपने तत्वशास्त्रीय विचार के अन्तर्गत कारणता सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। सांख्य दर्शन में भी कारणता सिद्धान्त का महत्वपूर्ण स्थान है। स्वभावतः प्रश्न उठता है कि कोई भी कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व कारण में वर्तमान रहता है या नहीं ? प्राचीन भारतीय दर्शन में उपरोक्त प्रश्न का उत्तर दो प्रकार से दिया गया है। भारतीय दर्शन का कुछ सम्प्रदाय इसका निषेधात्मक उत्तर देते हुए स्वीकार करते हैं कि कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व कारण में वर्तमान नहीं रहता है। इस विचार को 'असत्कार्यवाद' कहा जाता है और इसे मुख्य रूप से न्याय-वैशेषिक दर्शन तथा बौद्ध दर्शन के हीनयान सम्प्रदाय स्वीकार करता है। लेकिन कुछ अन्य सम्प्रदाय उपरोक्त प्रश्न का भावात्मक उत्तर देते हैं। जिसके कार्य अपने उत्पत्ति के पूर्व कारण में विद्यमान रहता है। इस विचार को सत्कार्यवाद कहा जाता है। इसे मुख्यतः सांख्य दर्शन, वेदान्त दर्शन तथा बौद्ध दर्शन का महायान सम्प्रदाय स्वीकार करता है।

सत्कार्यवाद के दो भेद माने जाते हैं-

① परिणामवाद - परिणामवाद के अनुसार कार्य-कारण का वास्तविक रूपान्तरण है। इसे सांख्य दर्शन तथा रामानुज स्वीकार करते हैं। लेकिन सांख्य और रामानुज के विचार में इस बात को लेकर अन्तर पाया जाता है कि सांख्य सम्पूर्ण विश्व को प्रकृति का रूपान्तरण मानते हैं। यही कारण है कि सांख्य के विचार को प्रकृति परिणामवाद तथा रामानुज के विचार को ब्रह्म परिणामवाद की संज्ञा दी जाती है।

Scanned with CamScanner

(11) विवर्तवाद - विवर्तवाद के अनुसार कार्य-कारण का अवास्तविक रूपान्तरण है। इसे शंकराचार्य, माध्यमिक सम्प्रदाय तथा योगाचार सम्प्रदाय स्वीकार करते हैं।

परिणामवाद और विवर्तवाद में अन्तर यह है कि परिणाम में कार्य और कारण में एक ही सत्ता होती है जबकि विवर्त में उसकी सत्ता भिन्न-भिन्न अथवा विषम होती है। मिट्टी से घड़ा बनना परिणामवाद का उदाहरण है और रस्सी का सर्प प्रतीत होना विवर्तवाद का उदाहरण है। सत्कार्यवाद और परिणामवाद के भिन्न-भिन्न रूपों को एक नामावली में इस प्रकार रखा जा सकता है।

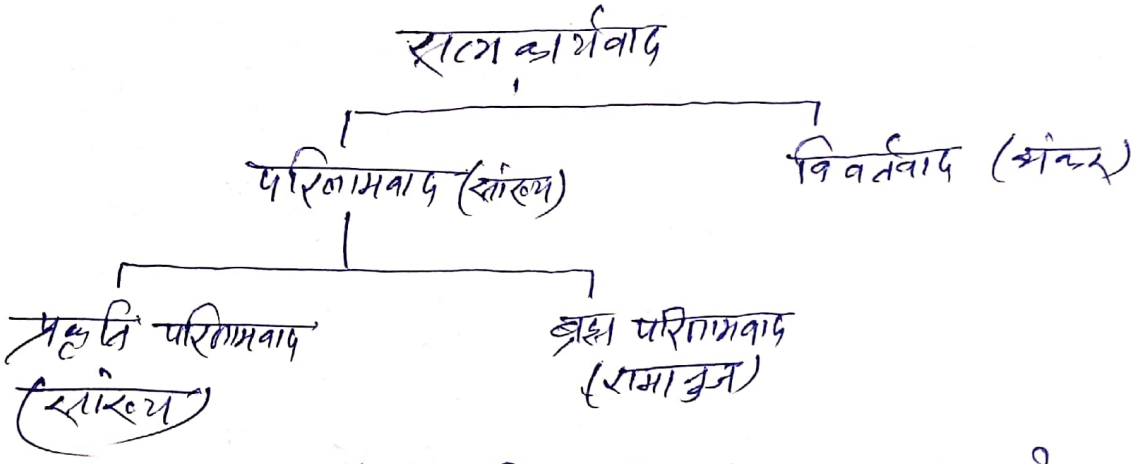

सांख्यकारिका में ईश्वर कृष्ण ने सत्कार्यवाद सिद्ध करने के लिए कहा है कि -

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसंभवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्॥"

सांख्यकारिका - 9

इस श्लोक में सत्कार्यवाद के पक्ष में पाँच युक्तियाँ दी गई हैं।

1. असदकरणात् अर्थात जो नहीं है (असत है) उसमें उत्पन्न करने की सामर्थ्य नहीं है। वह अकारण है। असत् में कारण व्यापार नहीं हो सकता। अतः यदि कार्य कारण में पहले से ही उपस्थित न हो तो वह आकाश कुसुम और बन्ध्यापुत्र

Scanned with CamScanner

के समान ही कार्य उत्पन्न नहीं कर सकता

(ii) उपादान ग्रहणात अर्थात कार्य की उत्पत्ति के लिए एक विशेष कारण, उपादान की आवश्यकता है। उपादान कारण में कार्य के अभाव में कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वास्तव में कार्य उपादान कारण की अभिव्यक्ति है क्योंकि वह (उपादान कारण) इस (कार्य) से अनिवार्य रूप से संबंधित है। उपादान कारण की उपस्थिति में कार्योत्पत्ति का भाव स्वतः ही निहित है।

(iii) सर्वसंभवाभावात् अर्थात यदि उपादान कारण का कार्य से संबंध न हो तो किसी भी कारण से कोई भी कार्य उत्पन्न हो सकता था परन्तु ऐसा नहीं पाया जाता। यदि ऐसा होता तो असत कारण से सत्कार्य की उत्पत्ति हो जाती। दही की उत्पत्ति दूध से हो सकती है और तेल की उत्पत्ति तेल के बीज से हो सकती है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दही अपनी उत्पत्ति के पूर्व दूध में वर्तमान है और तेल अपनी उत्पत्ति के पूर्व तेल के बीज में वर्तमान है। अतः यह सिद्ध है कि कार्य-कारण में उत्पत्ति के पूर्व ही विद्यमान रहता है।

(iv) शक्तस्य शक्यकरणात् अर्थात अव्यक्त शक्ति को व्यक्त करना ही उत्पत्ति है। जिस कारण में जिस कार्य को उत्पन्न करने की शक्ति होगी वही कार्य उससे उत्पन्न हो सकता है। अन्यथा बालू से तेल निकलता। अतः अभिव्यक्ति के पूर्व कार्य-कारण में अव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है।

(v) कारणभावात् अर्थात कारण और कार्य में अभेद अथवा तादात्म्य है। यह प्रश्न उपस्थित किया जा सकता है कि कारण और कार्य इन दो शब्दों की क्या आवश्यकता है?

इसका उत्तर है कि वास्तव में वे दोनों एक ही है कारण कार्य की अव्यक्तावस्था है और कार्य व्यक्तावस्था। उदाहरण स्वरूप हम घट को मिट्टी से कदापि अलग नहीं कर सकते। कारण घड़ा मिट्टी से भिन्न वस्तु नहीं अपितु मिट्टी ही है। कारण और कार्य के बीच भले ही आकार का भेद हो, लेकिन दोनों का स्वभाव एक ही होता है।

आलोचना/समीक्षा – उपर्युक्त तर्कों के आधार पर सांख्य दर्शन सत्कार्यवाद की स्थापना करता है। लेकिन इसके सत्कार्यवाद संबंधी अवधारणा की आलोचना आलोचकों ने की है और मुख्य रूप से न्याय वैशेषिक दर्शन इस विचार का खण्डन करता है।

(i) ~~कणाद के प्रवर्तक वैशेषिक सूत्र के अन्तर्गत~~ सत्कार्यवाद को मानने से कार्य की उत्पत्ति की व्याख्या करना असम्भव हो जाता है। यदि कार्य उत्पत्ति के पूर्व कारण में व्याप्त है फिर इस वाक्य का कि 'कार्य की उत्पत्ति हुई', क्या अर्थ है? यदि सूतों में कपड़ा वर्तमान है तब यह कहना कि 'कपड़े का निर्माण हुआ' अनावश्यक प्रतीत होता है।

(ii) यदि कार्य की सत्ता उत्पत्ति के पूर्व कारण में विद्यमान है, तो निमित्त कारण को मानना व्यर्थ है। प्रायः ऐसा कहा जाता है कि कार्य की उत्पत्ति निमित्त कारण के द्वारा सम्भव हुई है। परन्तु सांख्य का कार्य-कारण सम्बन्धी विचार निमित्त कारण को नष्ट कर देता है। यदि तिलहन के बीज में तेल निहित है तो फिर तेली की आवश्यकता का प्रश्न निरर्थक है।

(iii) यदि कार्य उत्पत्ति के पूर्व कारण में निहित है तो कारण और कार्य के बीच भेद करना कठिन हो जाता है। हम कैसे जान सकते हैं कि यह कारण है और यह कार्य है। यदि घड़ा मिट्टी में ही मौजूद है तो घड़ा और मिट्टी को एक दूसरे से अलग करना असम्भव है। इस प्रकार सत्कार्यवाद कारण और कार्य में भेद नष्ट कर देता है।

Scanned with CamScanner

(iv) सत्कार्यवाद कारण और कार्य को अभिन्न मानता है। यदि ऐसी बात है तो कारण और कार्य के लिए अलग-अलग नाम का प्रयोग करना निरर्थक है। यदि मिट्टी और उससे निर्मित घड़ा वस्तुतः एक है तो फिर मिट्टी और घड़े के लिए एक ही नाम का प्रयोग करना आवश्यक है।

Dr. Saroj Ram
Dept. of Philosophy
D.K. College, Dumraon

Scanned with CamScanner